

भारत में महिला सशक्तिकरण: चुनौतियाँ और अवसर

डॉ. अशोक कुमार, सहायक प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, हिसार, हरियाणा

सार

यह शोध-पत्र भारत में महिला सशक्तिकरण की वर्तमान दशा, उसके मार्ग की संरचनात्मक चुनौतियों और उभरते अवसरों का विश्लेषणात्मक साहित्यिक अध्ययन है। इसमें हिंदी एवं अंग्रेज़ी की पुस्तकों, सरकारी सर्वेक्षणों, अंतरराष्ट्रीय प्रतिवेदनों, विधिक अभिलेखों और समकक्ष-समीक्षित शोध-लेखों का विषयगत विश्लेषण किया गया है। सभी स्रोत वर्ष 2022 तक के हैं। निष्कर्ष बताते हैं कि भारत ने स्त्री-शिक्षा, वित्तीय समावेशन और स्थानीय राजनीतिक भागीदारी में उल्लेखनीय प्रगति की है। श्रम-बाज़ार में गुणवत्तापूर्ण भागीदारी, संपत्ति पर नियंत्रण, अवैतनिक देखभाल-कार्य के न्यायसंगत बँटवारे और हिंसा से सुरक्षा के मोर्चों पर गहरे अंतराल अब भी बने हुए हैं। अध्ययन "पहुँच से नियंत्रण तक का अंतराल" और "त्रि-स्तरीय सशक्तिकरण" जैसी विश्लेषणात्मक अवधारणाएँ प्रस्तावित करता है। इनके माध्यम से तर्क दिया गया है कि सशक्तिकरण केवल संसाधनों की उपलब्धता नहीं, बल्कि निर्णय-क्षमता, सामाजिक मानदंडों में परिवर्तन और संस्थागत जवाबदेही का समेकित परिणाम है।

कूट शब्द: महिला सशक्तिकरण, लैंगिक समानता, पितृसत्ता, श्रम-बल भागीदारी, अंतर्विभाजकता, हिंदी नारी-चिंतन

1. प्रस्तावना

भारतीय समाज की स्त्री-दृष्टि विरोधाभासों का संगम है। जिस भूमि पर शक्ति, सरस्वती और लक्ष्मी की उपासना की परंपरा रही, उसी भूमि पर बेटी के जन्म को बोझ मानने, बाल-विवाह, दहेज और घरेलू हिंसा जैसे यथार्थ भी पनपे। यह द्वंद्व केवल सामाजिक नहीं, बौद्धिक भी है। स्त्री को कभी देवी बनाकर पूज्य ठहराया गया और कभी अबला कहकर संरक्षण योग्य मान लिया गया। दोनों ही स्थितियों में उसकी स्वायत्तता सीमित रही। इसी पृष्ठभूमि में महिला सशक्तिकरण आज विकास-विमर्श, सार्वजनिक नीति और साहित्यिक चिंतन का केंद्रीय प्रश्न बन चुका है।

स्वतंत्र भारत के संविधान ने स्त्री-पुरुष समानता को मूल अधिकारों, नीति-निदेशक तत्वों और मूल कर्तव्यों, तीनों में स्थान दिया। अनुच्छेद 14 और 15 विधि के समक्ष समता और लिंग-आधारित भेदभाव के निषेध की गारंटी देते हैं। अनुच्छेद 15(3) राज्य को महिलाओं के लिए विशेष प्रावधान की शक्ति देता है। अनुच्छेद 39 और 42 समान कार्य के लिए समान वेतन तथा मातृत्व-सहायता के लक्ष्य निर्धारित करते हैं [1]। किंतु घोषणा और यथार्थ की दूरी का पहला विस्तृत आधिकारिक दस्तावेज़ 1974 में प्रकाशित "समानता की ओर" प्रतिवेदन था। उसने दर्शाया कि विकास के लाभ स्त्रियों तक समान रूप से नहीं पहुँचे और अनेक संकेतकों पर उनकी स्थिति कमज़ोर हुई है [2]।

"सशक्तिकरण" शब्द की अपनी वैचारिक यात्रा है। बल्लीवाला ने इसे ऐसी प्रक्रिया माना है जिसमें वंचित समूह शक्ति-संबंधों को चुनौती देकर संसाधनों और विचारधारा पर नियंत्रण प्राप्त करते हैं [3]। कबीर ने इसे तीन परस्पर जुड़े आयामों, संसाधन, एजेंसी और उपलब्धियों, के माध्यम से समझाया। उनके अनुसार सशक्तिकरण का सार उस क्षमता का उत्पन्न होना है जिसके सहारे व्यक्ति अपने जीवन के रणनीतिक चयन कर सके, जबकि पहले उसे इससे वंचित रखा गया था [4]। अमर्त्य सेन का क्षमता-दृष्टिकोण विकास को लोगों की वास्तविक स्वतंत्रताओं के विस्तार के रूप में देखता है। वह स्त्री की सक्रिय एजेंसी को विकास का साधन ही नहीं, साध्य भी मानता है [5]।

वैश्विक तुलना में भारत की स्थिति चिंतन की माँग करती है। विश्व आर्थिक मंच की वैश्विक लैंगिक अंतराल रिपोर्ट 2022 में भारत 146 देशों में 135वें स्थान पर रहा। आर्थिक भागीदारी एवं अवसर उप-सूचकांक पर उसका स्थान 143वाँ, शैक्षिक उपलब्धि पर 107वाँ, स्वास्थ्य एवं उत्तरजीविता पर 146वाँ और राजनीतिक सशक्तिकरण पर 48वाँ रहा [6]। यह असमान चित्र अपने आप में एक शोध-प्रश्न है। एक ही देश में एक आयाम पर अपेक्षाकृत मजबूत और दूसरे पर अत्यंत कमजोर प्रदर्शन क्यों दिखता है?

इस अध्ययन की आवश्यकता इसलिए भी है कि उपलब्ध साहित्य प्रायः खंडित है। अर्थशास्त्रीय अध्ययन श्रम और आय पर, जनसांख्यिकीय अध्ययन स्वास्थ्य और प्रजनन पर, विधिक अध्ययन अधिकारों पर तथा हिंदी का साहित्यिक चिंतन चेतना और अभिव्यक्ति पर केंद्रित रहता है। इन धाराओं के बीच संवाद कम है। प्रस्तुत पत्र इसी संवाद का एक प्रयास है। वह आँकड़ों, सिद्धांतों, विधिक ढाँचे और साहित्यिक अंतर्दृष्टियों को एक ही विश्लेषणात्मक धरातल पर रखकर चुनौतियों और अवसरों का समेकित मूल्यांकन करता है।

2. शोध उद्देश्य, शोध प्रश्न एवं पद्धति

उद्देश्य- अध्ययन के चार उद्देश्य हैं। पहला, भारत में महिला सशक्तिकरण की अवधारणात्मक एवं ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को समझना। दूसरा, संबंधित शोध-साहित्य की समीक्षा कर उसके प्रमुख निष्कर्षों को संकलित करना। तीसरा, उपलब्ध आधिकारिक आँकड़ों के आधार पर वर्तमान स्थिति का मूल्यांकन करना। चौथा, चुनौतियों और अवसरों का विविध दृष्टिकोणों से विश्लेषण कर नीतिगत तथा सामाजिक सुझाव देना।

शोध प्रश्न- अध्ययन तीन प्रश्नों के उत्तर खोजता है। भारत में सशक्तिकरण के विभिन्न आयामों, यानी शिक्षा, आर्थिक भागीदारी, राजनीतिक प्रतिनिधित्व, संपत्ति और सुरक्षा, में प्रगति असमान क्यों है? साहित्य के अनुसार वे कौन-से संरचनात्मक कारक हैं जो पहुँच को नियंत्रण में बदलने से रोकते हैं? और वे कौन-से हस्तक्षेप तथा परिवर्तन-प्रक्रियाएँ हैं जिन्हें साक्ष्य ने प्रभावी दिखाया है?

पद्धति- यह शोध विश्लेषणात्मक साहित्यिक (वर्णनात्मक समीक्षा) पद्धति पर आधारित है। कथात्मक साहित्य-समीक्षा की यह पद्धति व्यापक और बहु-अनुशासनिक विषयों के लिए उपयुक्त मानी जाती है, क्योंकि वह विविध प्रकार के स्रोतों को विषयगत तर्क से जोड़ने की सुविधा देती है [7]। स्रोतों का चयन तीन कसौटियों पर हुआ: (क) विषय-प्रासंगिकता, (ख) प्रामाणिकता,

यानी प्रतिष्ठित प्रकाशक, सरकारी संस्थान अथवा समकक्ष-समीक्षित पत्रिका, और (ग) प्रकाशन-वर्ष 2022 तक। हिंदी की मौलिक कृतियों को विशेष प्राथमिकता दी गई ताकि भारतीय संदर्भ की अपनी भाषा में विकसित हुई अंतर्दृष्टि विश्लेषण में शामिल रहे।

चयनित सामग्री का विश्लेषण विषयगत विश्लेषण की विधि से किया गया। इसके अंतर्गत स्रोतों को बार-बार पढ़कर आवर्ती अवधारणाएँ चिह्नित की गईं और उन्हें शिक्षा एवं स्वायत्तता, श्रम, राजनीतिक भागीदारी, संपत्ति, स्वास्थ्य एवं लिंग-चयन, तथा साहित्यिक-वैचारिक दृष्टि जैसे विषय-समूहों में संगठित किया गया [8]। कुल 63 स्रोतों का उपयोग हुआ। इनमें पुस्तकें और पुस्तक-अध्याय, समकक्ष-समीक्षित लेख, सरकारी एवं अंतरराष्ट्रीय प्रतिवेदन तथा विधिक अभिलेख सम्मिलित हैं। तालिका, अंक-तालिका अथवा किसी औपचारिक प्रवाह-आरेख की जगह तर्क को गद्य में विकसित किया गया है, जिससे विश्लेषण की निरंतरता बनी रहे।

सीमाएँ- अध्ययन द्वितीयक स्रोतों पर आधारित है, इसलिए प्राथमिक क्षेत्र-कार्य के निष्कर्ष इसमें नहीं हैं। स्रोत-सीमा वर्ष 2022 तक रखी गई है, अतः उसके बाद की नीतिगत तथा सांख्यिकीय घटनाएँ इस विश्लेषण से बाहर हैं। अनेक अध्ययन विशेष राज्यों या समुदायों पर आधारित हैं, इसलिए उनके निष्कर्षों का सामान्यीकरण सावधानी से किया गया है।

3. ऐतिहासिक एवं वैचारिक पृष्ठभूमि

भारतीय स्त्री की स्थिति किसी एक रेखा में नहीं बँधती। अल्तेकर के अध्ययन के अनुसार वैदिक काल में स्त्रियों को शिक्षा, धार्मिक अनुष्ठानों और सभा-समितियों में अपेक्षाकृत अधिक स्थान प्राप्त था। बाद की शताब्दियों में बाल-विवाह, शिक्षा पर प्रतिबंध और संपत्ति-अधिकारों के संकुचन के साथ उसकी स्थिति क्रमशः कमजोर होती गई [9]। इस ऐतिहासिक संकेत का महत्व यह है कि स्त्री-अधीनता को "सनातन" कहना ऐतिहासिक रूप से टिकाऊ तर्क नहीं है। वह सामाजिक निर्मिति है और इसीलिए परिवर्तनीय भी।

उन्नीसवीं शताब्दी के सुधार-आंदोलनों ने पहली बार स्त्री-प्रश्न को सार्वजनिक बहस में स्थापित किया। राधा कुमार के इतिहास-लेखन के अनुसार सती-प्रथा पर प्रतिबंध, विधवा-पुनर्विवाह अधिनियम, स्त्री-शिक्षा के प्रयास और बाद में महिला संगठनों का उदय एक ही प्रक्रिया के चरण थे। सुधारकों की दृष्टि में स्त्री प्रायः सुधार की वस्तु थी, विषय नहीं। बीसवीं शताब्दी में स्त्रियों के अपने संगठनों और स्वर के उभार से यह स्थिति बदलने लगी [10]। यह अंतर, यानी स्त्री के लिए किया गया सुधार बनाम स्त्री द्वारा किया गया संघर्ष, सशक्तिकरण की समकालीन बहस की जड़ में है।

राष्ट्रीय आंदोलन में महात्मा गांधी ने स्त्रियों की व्यापक सहभागिता को प्रेरित किया। उन्होंने बाल-विवाह, दहेज और पर्दा-प्रथा की मुखर आलोचना की और स्त्री को "अबला" कहने की प्रवृत्ति को अस्वीकार किया [11]। यद्यपि उनकी दृष्टि में त्याग और सेवा जैसे परंपरागत गुणों का आग्रह भी था, जिसकी आलोचना बाद के नारीवादी विमर्श में हुई, फिर भी सत्याग्रह में स्त्रियों की भागीदारी ने सार्वजनिक क्षेत्र में उनके प्रवेश के लिए निर्णायक ज़मीन तैयार की। भीमराव आंबेडकर ने विधिक धरातल पर अधिक क्रांतिकारी हस्तक्षेप किया। हिंदू कोड बिल के माध्यम से उन्होंने स्त्रियों को संपत्ति, तलाक और एकपत्नीत्व से जुड़े

अधिकार देने का प्रयास किया। विधेयक के अटकने पर उन्होंने विधि मंत्री का पद छोड़ दिया, और उसके प्रावधान बाद में खंडों में अधिनियमित हुए [12]।

हिंदी साहित्य में इस प्रश्न की सबसे प्रखर बौद्धिक अभिव्यक्तियों में महादेवी वर्मा का "श्रृंखला की कड़ियाँ" उल्लेखनीय है। उनके निबंधों का मूल स्वर यह है कि स्त्री को न देवी के आसन पर बैठकर पूजना है और न दया का पात्र बनाकर बचाना है। उसे स्वतंत्र चेतना वाले मनुष्य के रूप में स्वीकार करना है। वे स्त्री-मुक्ति को पुरुष की नकल नहीं, बल्कि अपनी विशिष्टता के साथ आत्मनिर्भरता की प्रक्रिया मानती हैं और शिक्षा तथा आर्थिक स्वावलंबन पर बल देती हैं [13]। पश्चिमी विमर्श में सिमोन द बोवुआर का कथन कि स्त्री पैदा नहीं होती, बनाई जाती है, इसी सामाजिक निर्मिति की सैद्धांतिक स्थापना है [14]। प्रभा खेतान ने इस ग्रंथ का हिंदी अनुवाद "स्त्री उपेक्षिता" नाम से किया। दोनों परंपराओं की यह अभिसारिता इंगित करती है कि स्त्री-प्रश्न की बुनियादी समझ सांस्कृतिक सीमाओं के पार साझा है।

स्वतंत्रता के बाद नीति-स्तर पर यह विमर्श क्रमशः संस्थागत रूप लेता गया। 1974 के प्रतिवेदन के बाद स्त्री-प्रश्न विकास-योजना का अंग बना [2]। 1995 की बीजिंग कार्य-योजना ने जेंडर मुख्यधारा-करण को वैश्विक एजेंडा बनाया [16]। भारत ने 2001 में महिलाओं के सशक्तिकरण हेतु राष्ट्रीय नीति घोषित की, जिसका घोषित उद्देश्य महिलाओं की उन्नति, विकास और सशक्तिकरण था [15]। नीति की भाषा में यह अपेक्षित परिवर्तन आया, किंतु आगे के खंड दिखाएंगे कि कार्यान्वयन के स्तर पर चुनौतियाँ किस रूप में बनी हुई हैं।

4. संबंधित शोध-साहित्य की समीक्षा: निष्कर्ष एवं प्रतिफल

4.1 शिक्षा, स्वायत्तता और सामाजिक संरचना- जेजीभाँय ने विकासशील देशों के साक्ष्य की समीक्षा करके दिखाया कि स्त्री-शिक्षा का संबंध अधिक स्वायत्तता, प्रजनन-व्यवहार और बाल-स्वास्थ्य में सुधार से है। साथ ही उन्होंने रेखांकित किया कि यह प्रभाव सामाजिक संदर्भ पर निर्भर करता है [17]। डायसन और मूर ने भारत के उत्तरी और दक्षिणी क्षेत्रों की नातेदारी-संरचना की तुलना की। उनके अनुसार उत्तर की पितृवंशीय, बहिर्विवाही व्यवस्था में स्त्री की स्वायत्तता कम रही, जबकि दक्षिण की अपेक्षाकृत निकट-नातेदारी व्यवस्था में अधिक [18]। ब्लूम और उनके सहयोगियों ने उत्तर भारतीय शहर के अध्ययन में स्वायत्तता को बहुआयामी बताया और पाया कि उसके अलग-अलग आयामों का मातृ-स्वास्थ्य सेवाओं के उपयोग से भिन्न संबंध है [19]। देसाई और एंड्रिस्ट ने विवाह-आयु के अध्ययन में शिक्षा के साथ-साथ लैंगिक मानदंडों की भूमिका पर बल दिया [20]। इन अध्ययनों का साझा निष्कर्ष यह है कि शिक्षा आवश्यक है पर पर्याप्त नहीं, और उसका प्रभाव सामाजिक-सांस्कृतिक ढाँचे से आकार लेता है।

4.2 श्रम-बाज़ार और आर्थिक भागीदारी- अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन के अध्ययन में कापसोस और उनके सहयोगियों ने 2004-05 के बाद भारत में महिला श्रम-बल भागीदारी में तीव्र गिरावट का विश्लेषण किया। उन्होंने पाया कि युवतियों का शिक्षा में बढ़ता नामांकन और पारिवारिक आय-वृद्धि इसे केवल आंशिक रूप से समझाते हैं। संरचनात्मक रूपांतरण के बावजूद महिलाओं के लिए उपयुक्त रोज़गार का पर्याप्त सृजन नहीं हुआ [21]। क्लासेन और पीटर्स ने शहरी भारत में इस ठहराव की व्याख्या में पति की आय-वृद्धि, शिक्षा-विस्तार के मिश्रित प्रभाव और उपयुक्त श्वेत-कॉलर नौकरियों की कमी को प्रमुख कारक बताया।

[22]। अफ्रीदी और उनके सहयोगियों ने ग्रामीण भारत की विवाहित महिलाओं के संदर्भ में पारिवारिक आय-वृद्धि समेत कई कारकों के योगदान का विश्लेषण किया [23]। कुल मिलाकर साहित्य यह संकेत देता है कि महिलाओं की श्रम-भागीदारी केवल व्यक्तिगत इच्छा या शिक्षा का प्रश्न नहीं, माँग-पक्ष, यानी उपयुक्त रोज़गार की उपलब्धता, और सामाजिक प्रतिष्ठा के मानदंडों का भी प्रश्न है।

4.3 राजनीतिक भागीदारी- पंचायतों में आरक्षण ने शोधकर्ताओं को प्राकृतिक प्रयोग का अवसर दिया। चट्टोपाध्याय और डुफ्लो ने पश्चिम बंगाल और राजस्थान में आरक्षण के यादृच्छिक आवंटन का लाभ उठाकर पाया कि महिला नेतृत्व वाली पंचायतों ने पेयजल जैसी बुनियादी सुविधाओं में अधिक निवेश किया, यानी नीतिगत प्राथमिकताएँ बदलीं [24]। बीमन और उनके सहयोगियों ने दिखाया कि महिला नेतृत्व के संपर्क से पुरुषों के पूर्वाग्रह में कमी आई और महिला नेताओं की प्रभावशीलता के बारे में धारणा बेहतर हुई [25]। एक अन्य अध्ययन के अनुसार महिला नेतृत्व वाले गाँवों में किशोरियों की आकांक्षाओं और शैक्षिक उपलब्धि में लैंगिक अंतर घटा [26]। इन प्रतिफलों का महत्व दोहरा है। आरक्षण ने प्रतिनिधित्व के साथ-साथ सामाजिक अपेक्षाओं को भी बदला।

4.4 संपत्ति और भूमि-अधिकार- बीना अग्रवाल के व्यापक अध्ययन का केंद्रीय तर्क है कि दक्षिण एशिया में स्त्री की आर्थिक सुरक्षा, कल्याण और सशक्तिकरण के लिए भूमि पर स्वतंत्र और प्रभावी अधिकार निर्णायक है। परिवार के माध्यम से मिलने वाला परोक्ष अधिकार पर्याप्त नहीं है [27]। बाद के लेख में उन्होंने राज्य, परिवार और बाज़ार को तीन अखाड़ों के रूप में देखा और सुझाया कि सामूहिक खेती जैसे समूह-आधारित तरीके महिलाओं के भूमि-तक पहुँच के नए मार्ग खोल सकते हैं [28]।

4.5 स्वास्थ्य, लिंग-चयन और "गुमशुदा स्त्रियाँ"- अमर्त्य सेन ने "गुमशुदा स्त्रियों" की अवधारणा के माध्यम से बताया कि एशिया और उत्तर अफ्रीका में स्त्रियों की उत्तरजीविता में भेदभाव के कारण दस करोड़ से अधिक स्त्रियाँ जनसंख्या-आँकड़ों से अनुपस्थित हैं [29]। भट और जेवियर ने उत्तर भारत में प्रजनन-दर घटने के साथ लिंग-पक्षपात के गहराने का साक्ष्य दिया [30]। जयचंद्रन ने विकासशील देशों में लैंगिक असमानता की जड़ों का सर्वेक्षण कर पाया कि आर्थिक विकास कुछ अंतराल कम करता है, पर पुत्र-प्राथमिकता और सांस्कृतिक मानदंड जैसे कारक बने रहते हैं, इसलिए नीतिगत हस्तक्षेप अनिवार्य हैं [31]।

4.6 समग्र सैद्धांतिक निष्कर्ष - डुफ्लो ने सशक्तिकरण और आर्थिक विकास के बीच द्वि-दिशात्मक संबंध का विश्लेषण किया। उनका निष्कर्ष है कि विकास अपने आप स्त्री-असमानता को नहीं मिटाता, इसलिए आरक्षण जैसी लक्षित नीतियाँ भी आवश्यक हैं [32]।

4.7 हिंदी साहित्यिक-वैचारिक साहित्य- राजेंद्र यादव द्वारा संपादित "आदमी की निगाह में औरत" स्त्री के प्रति पुरुष-दृष्टि की परतों को खोलकर दिखाता है कि स्त्री की छवि किस प्रकार पुरुष-सत्ता द्वारा गढ़ी जाती रही है [33]। प्रभा खेतान की "उपनिवेश में स्त्री" पितृसत्ता को उपनिवेश-सदृश सत्ता-संरचना मानते हुए स्त्री-मुक्ति की आकांक्षा पर विमर्श करती है [34]। इस हिंदी चिंतन की विशेषता यह है कि वह आँकड़ों से नहीं, अनुभव और भाषा के धरातल से सशक्तिकरण की मानसिक-सांस्कृतिक बाधाओं को पकड़ता है, जिन्हें सर्वेक्षण-आधारित साहित्य अक्सर पूरी तरह नहीं देख पाता।

4.8 समेकित समीक्षा-निष्कर्ष- उपर्युक्त साहित्य से तीन बातें उभरती हैं। पहली, लगभग सभी अध्ययन सहमत हैं कि सशक्तिकरण बहुआयामी है और एक आयाम की प्रगति दूसरे में स्वतः रूपांतरित नहीं होती। दूसरी, सामाजिक मानदंड और नातेदारी-संरचना संसाधनों के प्रभाव को अनुकूलित या निष्प्रभ करते हैं। तीसरी, प्रतिनिधित्व और अवसर-सृजन जैसे लक्षित हस्तक्षेप मानदंडों को बदलने में सक्षम पाए गए हैं। असहमति मुख्यतः इस पर है कि श्रम-भागीदारी की गिरावट में माँग-पक्ष और मानदंड-पक्ष का सापेक्ष योगदान कितना है।

5. वर्तमान स्थिति: आँकड़ों के आईने में

जनसांख्यिकी और शिक्षा- जनगणना 2011 के अनुसार देश का लिंगानुपात प्रति हजार पुरुषों पर 943 महिलाएँ था, जबकि 0-6 आयु-वर्ग में यह घटकर 919 रह गया। महिला साक्षरता 65.46 प्रतिशत और पुरुष साक्षरता 82.14 प्रतिशत थी [35]। यानी साक्षरता में लगभग 16.7 प्रतिशत-बिंदु का अंतर था और बाल-लिंगानुपात कुल लिंगानुपात से कम था, जो जन्म-पूर्व और जन्म-पश्चात के भेदभाव का संकेत है। राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण-5 (2019-21) में स्थिति में उल्लेखनीय सुधार दिखता है। 15-49 आयु की महिलाओं में दस या अधिक वर्ष की स्कूली शिक्षा प्राप्त महिलाओं का अनुपात लगभग 41 प्रतिशत और साक्षर महिलाओं का लगभग 71.5 प्रतिशत दर्ज हुआ। पहली बार जनसंख्या का कुल लिंगानुपात प्रति हजार पुरुषों पर लगभग 1,020 महिलाएँ रहा [36]।

वित्तीय समावेशन और संपत्ति- उसी सर्वेक्षण में लगभग 78.6 प्रतिशत महिलाओं के पास ऐसा बैंक या बचत खाता था जिसका वे स्वयं उपयोग करती हैं। लगभग 54 प्रतिशत के पास अपना मोबाइल फ़ोन था। पर मकान या भूमि पर अकेले या संयुक्त स्वामित्व रखने वाली महिलाओं का अनुपात केवल लगभग 43.3 प्रतिशत था [36]। यह अंतर, यानी खाते की पहुँच 78.6 प्रतिशत और संपत्ति का स्वामित्व 43.3 प्रतिशत, लगभग 35 प्रतिशत-बिंदु का है। मेरे विचार में यह पहुँच और नियंत्रण के अंतराल का सबसे स्पष्ट संख्यात्मक चित्र है, जिस पर आगे चर्चा होगी।

श्रम-बाज़ार- आवधिक श्रम-बल सर्वेक्षण के अनुसार 15 वर्ष और अधिक आयु की महिलाओं की श्रम-बल भागीदारी दर 2017-18 में लगभग 23.3 प्रतिशत थी [37] और 2021-22 में लगभग 32.8 प्रतिशत हुई [38]। यह वृद्धि सकारात्मक संकेत है। परंतु इसकी गुणवत्ता का प्रश्न अनुत्तरित है। क्या यह वृद्धि वेतनभोगी, सुरक्षित और सम्मानजनक रोज़गार की है, या अवैतनिक पारिवारिक श्रम तथा स्वरोज़गार की बढ़ोतरी है? इस विवेचना के बिना केवल दर की वृद्धि को सशक्तिकरण मान लेना जोखिम भरा होगा।

अवैतनिक कार्य- राष्ट्रीय सांख्यिकी कार्यालय के समय-उपयोग सर्वेक्षण 2019 के अनुसार महिलाएँ प्रतिदिन औसतन लगभग 299 मिनट अवैतनिक घरेलू सेवाओं में लगाती हैं, जबकि पुरुष लगभग 97 मिनट। इन कार्यों में भाग लेने वाली महिलाओं का अनुपात लगभग 81 प्रतिशत और पुरुषों का लगभग 26 प्रतिशत रहा [39]। सरल गणना से महिलाओं का अवैतनिक घरेलू श्रम पुरुषों की तुलना में लगभग तीन गुना ($299/97 \approx 3.1$) ठहरता है। यह "समय-निर्धनता" श्रम-बाज़ार में भागीदारी की सबसे बड़ी अदृश्य बाधाओं में से है।

राजनीतिक प्रतिनिधित्व- तिहत्तरवें संविधान संशोधन ने पंचायतों में कम-से-कम एक-तिहाई स्थान महिलाओं के लिए आरक्षित किए [40] (मूल पाठ हेतु अभिलेख [42])। कई राज्यों ने बाद में इस सीमा को बढ़ाकर आधा कर दिया। परंतु संसद में तस्वीर भिन्न है। सत्रहवीं लोकसभा (2019) में 78 महिलाएँ निर्वाचित हुईं, जो अब तक की सर्वाधिक संख्या होकर भी सदन का लगभग 14 प्रतिशत ही है [41]। स्थानीय स्तर के आरक्षण और राष्ट्रीय स्तर के अल्प-प्रतिनिधित्व का यह अंतर बताता है कि राजनीतिक सशक्तिकरण में आरक्षण की भूमिका निर्णायक रही है।

हिंसा और सुरक्षा- राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो के अनुसार 2021 में महिलाओं के विरुद्ध अपराध के लगभग 4.28 लाख मामले दर्ज हुए, जिनमें सबसे बड़ा हिस्सा पति या रिश्तेदारों द्वारा क्रूरता का था [40]। परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण में 18-49 आयु की विवाहित महिलाओं में से लगभग 29.3 प्रतिशत ने कभी-न-कभी पति-द्वारा हिंसा का अनुभव बताया, और 20-24 आयु की लगभग 23.3 प्रतिशत महिलाओं का विवाह 18 वर्ष से पहले हो चुका था [36]। कुल आबादी में इस प्रतिशत की तुलना दर्ज मामलों से करने पर स्पष्ट होता है कि अधिकांश हिंसा पंजीकृत ही नहीं होती।

6. चुनौतियाँ

6.1 पितृसत्तात्मक मानदंड और "पितृसत्ता से सौदेबाज़ी"- कंदियोटी की अवधारणा "पितृसत्तात्मक सौदा" बताती है कि स्त्रियाँ अक्सर सत्ता-संरचना के भीतर अपनी सुरक्षा और सीमित लाभ सुनिश्चित करने के लिए रणनीतिक समझौते करती हैं [43]। इस दृष्टि से स्त्री की निष्क्रियता को उसकी "सहमति" कहना भ्रामक है। वह अक्सर सीमित विकल्पों के बीच चयन का परिणाम होती है। यही कारण है कि केवल कानून या संसाधन-वितरण से मानदंड नहीं बदलते।

6.2 लिंग-चयन और बाल-विवाह- पुत्र-प्राथमिकता के विरुद्ध पूर्व-गर्भाधान एवं प्रसव-पूर्व निदान तकनीक (लिंग-चयन प्रतिषेध) अधिनियम 1994 मौजूद है [44]। पर नवीनतम सर्वेक्षण में पिछले पाँच वर्षों में जन्मे बच्चों का जन्म-समय लिंगानुपात केवल 929 रहा [36]। जैविक रूप से सामान्य जन्म-अनुपात प्रति हजार लड़कों पर लगभग 950 लड़कियों के आसपास माना जाता है, अतः यह अंतर लिंग-चयन की निरंतरता का संकेत है। इसी प्रकार बाल-विवाह निषेध अधिनियम 2006 के बाद भी [45] बड़ी संख्या में लड़कियों का विवाह 18 वर्ष से पहले हो रहा है। इससे स्पष्ट है कि कानून का अस्तित्व और उसका सामाजिक अनुपालन दो अलग यथार्थ हैं।

6.2 (क) दहेज- दहेज प्रतिषेध अधिनियम 1961 के छह दशक बाद भी [46] दहेज-संबंधी क्रूरता दर्ज मामलों का बड़ा हिस्सा है। दहेज की प्रथा बेटी के जन्म को आर्थिक बोझ की तरह देखने की मानसिकता को पोसती है और इस तरह लिंग-चयन, शिक्षा-निवेश में भेदभाव और घरेलू हिंसा की एक ही जड़ बन जाती है।

6.3 शिक्षा और रोज़गार के बीच खाई- विश्व आर्थिक मंच की रैंकिंग में शैक्षिक उपलब्धि पर 107वाँ और आर्थिक भागीदारी पर 143वाँ स्थान [6] इसी अंतराल का प्रमाण है। लड़कियों की शिक्षा का विस्तार हुआ है, पर उसका रूपांतरण वेतनभोगी और सम्मानजनक कार्य में नहीं हो रहा। क्लासेन और पीटर्स के अनुसार इसका एक कारण उपयुक्त नौकरियों की कमी है [22]।

दूसरा कारण सुरक्षा-भय, गतिशीलता की सीमाएँ और परिवार की प्रतिष्ठा से जुड़े मानदंड हैं, जो महिलाओं की श्रम-भागीदारी को सीमित करते हैं।

6.4 अवैतनिक श्रम का बोझ- समय-उपयोग सर्वेक्षण के 299 बनाम 97 मिनट के अंतर [39] का अर्थ है कि महिला का दिन घर के भीतर की अदृश्य अर्थव्यवस्था में खप जाता है। इस श्रम का न वेतन है, न सामाजिक मान्यता। यह कार्य-भार सशक्तिकरण की तीन आवश्यक शर्तों, समय, आय और आत्म-विश्वास, को एक साथ प्रभावित करता है।

6.5 हिंसा और कानून के क्रियान्वयन की समस्या- हिंसा की व्यापकता [36] और दर्ज मामलों के अंतर [40] से एक संस्थागत समस्या उभरती है। पीड़ित महिला के लिए थाने, न्यायालय और सामाजिक परिवेश तक पहुँचने की लागत अत्यधिक है। जब रिपोर्ट करना जोखिम भरा और न्याय पाना लंबी प्रक्रिया हो, तो कानून की उपस्थिति भी सुरक्षा में नहीं बदलती।

6.6 सामाजिक विभाजनों की परतें- जाति, वर्ग, धर्म, क्षेत्र और विकलांगता महिलाओं के अनुभव को अलग-अलग ढंग से गढ़ते हैं। दलित, आदिवासी और अल्पसंख्यक समुदायों की महिलाओं के लिए बाधाएँ दोहरी और तिहरी होती हैं। इसे अगले खंडों में अंतर्विभाजकता के रूप में देखा गया है।

7. अवसर

7.1 विधिक-संस्थागत ढाँचे का विस्तार- पिछले दो दशकों में कई निर्णायक प्रावधान आए हैं। हिंदू उत्तराधिकार (संशोधन) अधिनियम 2005 ने पुत्रियों को पैतृक संपत्ति में समान सहदायिक अधिकार दिया [47], और उच्चतम न्यायालय ने विनीता शर्मा बनाम राकेश शर्मा (2020) में स्पष्ट किया कि यह अधिकार जन्म से प्राप्त होता है [48]। घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम 2005 ने सुरक्षा-आदेश और निवास के अधिकार जैसे उपचार दिए [49]। कार्यस्थल पर लैंगिक उत्पीड़न (निवारण, प्रतिषेध और प्रतितोष) अधिनियम 2013 ने आंतरिक शिकायत समितियों की व्यवस्था की [50]। मातृत्व लाभ (संशोधन) अधिनियम 2017 ने सवैतनिक मातृत्व अवकाश बढ़ाकर 26 सप्ताह किया [51]। ये सभी अवसर हैं, बशर्ते इनकी जानकारी और प्रवर्तन सुनिश्चित हो।

7.2 रोज़गार के नए द्वार- जेन्सन के प्रयोगात्मक अध्ययन में गाँवों में व्यावसायिक-प्रक्रिया-आउटसोर्सिंग (बी.पी.ओ.) क्षेत्र के लिए भर्ती-सेवाएँ पहुँचाने से युवतियों के रोज़गार में वृद्धि हुई, विवाह और प्रथम प्रसव की आयु बढ़ी और शिक्षा-निवेश में सुधार हुआ [52]। यह साक्ष्य बताता है कि माँग-पक्ष पर अवसर की उपस्थिति, विशेषकर पास के और सुरक्षित रोज़गार, परिवारों के निर्णय बदल सकती है। यही तर्क डिजिटल-अर्थव्यवस्था, दूरस्थ कार्य और सेवा-क्षेत्र के विस्तार पर लागू होता है।

7.3 मीडिया और सूचना का प्रभाव- जेन्सन और ऑस्टर ने भारत में केबल टेलीविजन के प्रसार का अध्ययन कर पाया कि इसके साथ घरेलू हिंसा की स्वीकार्यता और पुत्र-प्राथमिकता में कमी आई और महिलाओं की स्वायत्तता बढ़ी [53]। इसका अर्थ है कि सूचना और प्रतिरूपण, यानी अलग जीवन-शैली देखने का अवसर, मानसिक मानदंडों को बदलने का सशक्त माध्यम है। आज के डिजिटल युग में यह संभावना और भी व्यापक है।

7.4 सामूहिक संगठन और वित्तीय समावेशन- स्वयं सहायता समूहों के संबंध में स्वेन और वालेंटिन ने भारत के आँकड़ों के आधार पर पाया कि समूहों की सदस्यता महिलाओं के सशक्तिकरण के संकेतकों पर सकारात्मक प्रभाव डालती है [54]। बैंक खातों की व्यापक पहुँच [36] इस संगठन-शक्ति के साथ मिलकर ऋण, बचत और उद्यमिता के नए मार्ग खोल सकती है, बशर्ते नियंत्रण वास्तव में महिला के हाथ में हो।

7.5 सार्वजनिक कार्यवाई और क्षेत्रीय सीख- ड्रेज़ और सेन ने भारत के अनुभव के विश्लेषण में दिखाया कि जिन क्षेत्रों में शिक्षा और स्वास्थ्य पर सार्वजनिक कार्यवाई सुदृढ़ रही और महिलाओं की एजेंसी को स्थान मिला, वहाँ मानव-विकास संकेतक बेहतर रहे [55]। इसका नीतिगत निहितार्थ यह है कि अवसर आयातित नहीं, पहले से मौजूद क्षेत्रीय उदाहरणों में खोजे और दोहराए जा सकते हैं।

8. विविध दृष्टिकोणों से विश्लेषण

8.1 क्षमता-दृष्टिकोण- नसबॉम का क्षमता-दृष्टिकोण पूछता है कि स्त्री वास्तव में क्या करने और बनने में सक्षम है। यह आय या संसाधन को पर्याप्त सूचक नहीं मानता [56]। इस कसौटी पर खाते की पहुँच (78.6 प्रतिशत) उपलब्धि है, पर संपत्ति का नियंत्रण (43.3 प्रतिशत) [36] अभी अधूरी क्षमता है। यह दृष्टिकोण नीति को पहुँच-केंद्रित मूल्यांकन से क्षमता-केंद्रित मूल्यांकन की ओर ले जाने का सुझाव देता है।

8.2 दलित-बहुजन नारीवादी दृष्टि- शर्मिला रेगे ने तर्क दिया कि मुख्यधारा का नारीवाद अक्सर सवर्ण स्त्री के अनुभव को सार्वभौमिक मान लेता है, जबकि दलित स्त्री जाति और लिंग दोनों की असमानताएँ एक साथ झेलती है [57]। उमा चक्रवर्ती ने दिखाया कि जाति-व्यवस्था और पितृसत्ता स्त्री की यौनिकता और श्रम पर नियंत्रण के माध्यम से आपस में गुंथी हुई हैं [58]। अतः सशक्तिकरण की नीतियाँ जाति-निरपेक्ष नहीं हो सकतीं।

8.3 अंतर्विभाजकता और उत्तर-औपनिवेशिक आलोचना- क्रेनशॉ की अंतर्विभाजकता की अवधारणा बताती है कि जब पहचानें एक साथ काम करती हैं तो भेदभाव को अलग-अलग खानों में बाँटकर नहीं समझा जा सकता [59]। मोहंती ने चेतावनी दी कि "तीसरी दुनिया की स्त्री" को एकरूप पीड़ित के रूप में चित्रित करना औपनिवेशिक दृष्टि की पुनरावृत्ति है [60]। भारतीय संदर्भ में इसका अर्थ है कि सशक्तिकरण का एजेंडा बाहर से आरोपित नहीं, स्थानीय स्त्रियों की अपनी आवाज़ से निर्मित होना चाहिए।

8.4 भारतीय नारीवादी चिंतन- निवेदिता मेनन ने अपनी पुस्तक में नारीवाद को केवल अधिकार-प्राप्ति की माँग नहीं, बल्कि समाज को देखने की एक दृष्टि के रूप में प्रस्तुत किया। यह दृष्टि रोजमर्रा की राजनीति में लैंगिक आयाम को पहचानती है [61]। यह विचार हिंदी के चिंतन से मिलता है, जहाँ महादेवी वर्मा स्त्री को केवल संरक्षण-योग्य नहीं, चेतना-संपन्न मनुष्य मानती हैं [13]। दोनों का साझा स्वर यही है कि सशक्तिकरण की शुरुआत दृष्टि-परिवर्तन से होती है।

8.5 सशक्तिकरण की आलोचना- बल्लीवाला ने बाद के लेख में चेताया कि विकास-संस्थाओं की भाषा में सशक्तिकरण से "शक्ति" का राजनीतिक अर्थ निकल गया है और वह तकनीकी लक्ष्य बन गया है [62]। कॉर्नवॉल ने भी पूछा कि क्या सशक्तिकरण की परियोजनाएँ वास्तव में शक्ति-संबंध बदलती हैं और कहा कि प्रभावी हस्तक्षेप वही हैं जो सामूहिक संगठन और संरचनात्मक बाधाओं पर काम करते हैं [63]। यह आलोचना हमें याद दिलाती है कि लघु-ऋण या कौशल-प्रशिक्षण जैसे कार्यक्रम अपने आप में सशक्तिकरण नहीं हैं।

8.6 हिंदी साहित्यिक दृष्टि- हिंदी चिंतन इस बहस में एक अनिवार्य आयाम जोड़ता है। राजेंद्र यादव का संकलन [33] बताता है कि स्त्री की छवि पुरुष-दृष्टि से रची जाती रही है, इसलिए सशक्तिकरण में प्रतिनिधित्व और प्रतिरूपण का संघर्ष भी शामिल है। खेतान का उपनिवेश-रूपक [34] दिखाता है कि पितृसत्ता महज व्यक्तिगत पूर्वाग्रह नहीं, एक संरचनात्मक सत्ता है जिसे उपनिवेशवाद की तरह विसंस्कृत किया जाना है। इन दृष्टियों का सार यह है कि साहित्य स्त्री की आत्म-छवि और भाषा बदलकर सशक्तिकरण की पूर्व-शर्तें रचता है।

9. चर्चा, विश्लेषणात्मक प्रस्ताव एवं निष्कर्ष

9.1 पहला प्रस्ताव: पहुँच से नियंत्रण तक का अंतराल- साहित्य और आँकड़ों के संयुक्त पाठ से यह अवधारणा उभरती है। भारत में महिलाओं की संसाधनों तक पहुँच, यानी साक्षरता, बैंक खाता, मोबाइल, पंचायत में उपस्थिति, तेज़ी से बढ़ी है। परंतु उन संसाधनों पर निर्णायक नियंत्रण अब भी पिछड़ा है। खाते और संपत्ति-स्वामित्व के बीच लगभग 35 प्रतिशत-बिंदु का अंतर [36], शिक्षा और आर्थिक भागीदारी के रैंकों (107 बनाम 143) का अंतर [6] और घरेलू श्रम का तीन गुना बोझ [39] इसी अंतराल के अलग-अलग रूप हैं। कबीर का "संसाधन-एजेंसी-उपलब्धि" ढाँचा [4] इस अंतराल को समझने का उपयुक्त सैद्धांतिक आधार देता है।

9.2 दूसरा प्रस्ताव: त्रि-स्तरीय सशक्तिकरण- अनुभवजन्य साक्ष्य के आधार पर यह अध्ययन सुझाता है कि टिकाऊ सशक्तिकरण तीन स्तरों पर एक साथ प्रगति माँगता है। पहला, संसाधन-स्तर, यानी शिक्षा, स्वास्थ्य, आय और संपत्ति। दूसरा, संस्थान-स्तर, यानी कानून, न्याय-प्रणाली, प्रतिनिधित्व और कार्यस्थल की नीतियाँ। तीसरा, मानसिकता-स्तर, यानी परिवार और समाज के मानदंड, मीडिया की छवियाँ और भाषा का प्रयोग। जेन्सन [52], जेन्सन-ऑस्टर [53] और बीमन के अध्ययन [25,26] बताते हैं कि मानसिकता-स्तर पर परिवर्तन संभव है, परंतु तब जब संसाधन और संस्थान उसका साथ दें। अकेला कोई स्तर पर्याप्त नहीं है।

9.3 तीसरा प्रस्ताव: अवैतनिक श्रम एक अदृश्य "कर" है- समय-उपयोग सर्वेक्षण के आँकड़े [39] दर्शाते हैं कि महिलाएँ प्रतिदिन लगभग 200 मिनट अधिक अवैतनिक घरेलू सेवाएँ देती हैं, यानी लगभग 202 मिनट का अंतर (299-97)। इसे एक प्रकार का अदृश्य कर माना जा सकता है, जो उनके समय, आय-अर्जन और राजनीतिक-सामाजिक भागीदारी के अवसर घटाता है। इसलिए बाल-देखभाल, पानी और ईंधन की सुविधा तथा घरेलू कार्यों में पुरुष-सहभागिता महज "कल्याण" नहीं, आर्थिक सशक्तिकरण की शर्तें हैं।

9.4 चौथा प्रस्ताव: साहित्य-नीति सेतु- नीति प्रायः आँकड़ों से चलती है और साहित्य अनुभव से। हिंदी के नारी-चिंतन [13,33,34] ने जो मानसिक-सांस्कृतिक बाधाएँ पहचानीं, वे नीति की कार्ययोजनाओं में कम दिखती हैं। स्कूली पाठ्यक्रम, मीडिया-साक्षरता, समुदाय-संवाद और भाषा के प्रयोग में साहित्य को नीति का सहयात्री बनाकर मानसिकता-स्तर पर हस्तक्षेप को अधिक प्रभावी बनाया जा सकता है।

9.5 नीतिगत एवं सामाजिक सुझाव- उपर्युक्त विश्लेषण से निम्न सुझाव निकलते हैं। सबसे पहले, संपत्ति-अधिकारों की जागरूकता और उनके प्रभावी प्रवर्तन पर बल दिया जाए, ताकि 2005 के संशोधन [47] और 2020 के निर्णय [48] का लाभ वास्तविक स्वामित्व में बदले। दूसरे, महिलाओं के लिए सुरक्षित, निकटवर्ती और गुणवत्तापूर्ण रोजगार सृजित किए जाएँ, क्योंकि साक्ष्य बताता है कि माँग-पक्ष की कमी प्रमुख बाधा है [21,22,52]। तीसरे, देखभाल-संरचनाओं, यानी शिशु-गृह, वृद्ध-देखभाल और घरेलू सुविधाओं, में निवेश के साथ पुरुष-सहभागिता को प्रोत्साहित किया जाए। चौथे, घरेलू हिंसा और कार्यस्थल-उत्पीड़न के कानूनों [49,50] के क्रियान्वयन में जवाबदेही और पहुँच-सुलभता बढ़ाई जाए। पाँचवें, नीतियों में जाति, वर्ग और क्षेत्र की अंतर्विभाजकता को स्पष्ट स्थान मिले [57-59]। छठे, मीडिया और शिक्षा के माध्यम से पुत्र-प्राथमिकता तथा दहेज-मानसिकता को चुनौती दी जाए [53]।

9.6 निष्कर्ष- यह अध्ययन बताता है कि भारत में महिला सशक्तिकरण की कथा एकरेखीय प्रगति या निराशा की नहीं, असमान विकास की कथा है। शिक्षा, वित्तीय समावेशन और स्थानीय राजनीति में उपलब्धियाँ वास्तविक हैं और श्रेय के योग्य हैं। परंतु श्रम की गुणवत्ता, संपत्ति का नियंत्रण, अवैतनिक कार्य का बँटवारा और हिंसा से सुरक्षा में अंतराल उतने ही वास्तविक हैं। साहित्य का समेकित पाठ यह भी बताता है कि परिवर्तन के साधन उपलब्ध हैं: लक्षित हस्तक्षेप, विधिक सुधार, सामूहिक संगठन और मानसिकता-परिवर्तन की सांस्कृतिक रणनीतियाँ। आवश्यकता उन्हें एक साथ, संवेदनशीलता और जवाबदेही के साथ लागू करने की है। महादेवी वर्मा का यह आग्रह आज भी प्रासंगिक है कि स्त्री को न पूजा जाए, न पीड़ित मानकर दया दिखाई जाए, बल्कि उसे स्वतंत्र मनुष्य के रूप में सम्मान दिया जाए [13]। सशक्तिकरण की सच्ची कसौटी यही है कि स्त्री के हाथ में निर्णय की शक्ति हो, और वह शक्ति संसाधन, संस्थान और समाज, तीनों की स्वीकृति से टिकाऊ बने।

संदर्भ

1. भारत का संविधान. नई दिल्ली: विधि एवं न्याय मंत्रालय, भारत सरकार; 1950.
2. Committee on the Status of Women in India. Towards equality: report of the Committee on the Status of Women in India. New Delhi: Department of Social Welfare, Ministry of Education and Social Welfare, Government of India; 1974.
3. Batliwala S. The meaning of women's empowerment: new concepts from action. In: Sen G, Germain A, Chen LC, editors. Population policies reconsidered: health, empowerment, and rights. Boston: Harvard Center for Population and Development Studies; 1994. p. 127-38.

4. Kabeer N. Resources, agency, achievements: reflections on the measurement of women's empowerment. Dev Change. 1999;30(3):435-64.
5. Sen A. Development as freedom. Oxford: Oxford University Press; 1999.
6. World Economic Forum. Global gender gap report 2022. Geneva: World Economic Forum; 2022.
7. Green BN, Johnson CD, Adams A. Writing narrative literature reviews for peer-reviewed journals: secrets of the trade. J Chiropr Med. 2006;5(3):101-17.
8. Braun V, Clarke V. Using thematic analysis in psychology. Qual Res Psychol. 2006;3(2):77-101.
9. Altekar AS. The position of women in Hindu civilization: from prehistoric times to the present day. Delhi: Motilal Banarsidass; 1956.
10. Kumar R. The history of doing: an illustrated account of movements for women's rights and feminism in India, 1800-1990. New Delhi: Kali for Women; 1993.
11. Gandhi MK. Women and social injustice. Ahmedabad: Navajivan Publishing House; 1942.
12. Ambedkar BR. Dr. Babasaheb Ambedkar: writings and speeches. Vol. 14, Part 1. Mumbai: Education Department, Government of Maharashtra; 1995.
13. वर्मा म. श्रृंखला की कड़ियाँ. प्रयागराज: लोकभारती प्रकाशन; 1942.
14. Beauvoir S de. The second sex. Parshley HM, translator. New York: Alfred A. Knopf; 1953.
15. महिलाओं के सशक्तिकरण हेतु राष्ट्रीय नीति, 2001. नई दिल्ली: महिला एवं बाल विकास विभाग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार; 2001.
16. United Nations. Report of the Fourth World Conference on Women, Beijing, 4-15 September 1995. New York: United Nations; 1996.
17. Jejeebhoy SJ. Women's education, autonomy, and reproductive behaviour: experience from developing countries. Oxford: Clarendon Press; 1995.
18. Dyson T, Moore M. On kinship structure, female autonomy, and demographic behavior in India. Popul Dev Rev. 1983;9(1):35-60.
19. Bloom SS, Wypij D, Das Gupta M. Dimensions of women's autonomy and the influence on maternal health care utilization in a north Indian city. Demography. 2001;38(1):67-78.
20. Desai S, Andrist L. Gender scripts and age at marriage in India. Demography. 2010;47(3):667-87.

21. Kapsos S, Silberman A, Bourmpoula E. Why is female labour force participation declining so sharply in India? ILO Research Paper No. 10. Geneva: International Labour Organization; 2014.
22. Klasen S, Pieters J. What explains the stagnation of female labor force participation in urban India? World Bank Econ Rev. 2015;29(3):449-78.
23. Afridi F, Dinkelman T, Mahajan K. Why are fewer married women joining the work force in rural India? A decomposition analysis over two decades. J Popul Econ. 2018;31(3):783-818.
24. Chattopadhyay R, Duflo E. Women as policy makers: evidence from a randomized policy experiment in India. Econometrica. 2004;72(5):1409-43.
25. Beaman L, Chattopadhyay R, Duflo E, Pande R, Topalova P. Powerful women: does exposure reduce bias? Q J Econ. 2009;124(4):1497-540.
26. Beaman L, Duflo E, Pande R, Topalova P. Female leadership raises aspirations and educational attainment for girls: a policy experiment in India. Science. 2012;335(6068):582-6.
27. Agarwal B. A field of one's own: gender and land rights in South Asia. Cambridge: Cambridge University Press; 1994.
28. Agarwal B. Gender and land rights revisited: exploring new prospects via the state, family and market. J Agrar Change. 2003;3(1-2):184-224.
29. Sen A. Missing women. BMJ. 1992;304(6827):587-8.
30. Bhat PNM, Zaviera AJF. Fertility decline and gender bias in northern India. Demography. 2003;40(4):637-57.
31. Jayachandran S. The roots of gender inequality in developing countries. Annu Rev Econ. 2015;7:63-88.
32. Duflo E. Women empowerment and economic development. J Econ Lit. 2012;50(4):1051-79.
33. यादव रा, संपादक. आदमी की निगाह में औरत. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन; 2001.
34. खेतान प्र. उपनिवेश में स्त्री: मुक्ति कामना की दस वार्ताएँ. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन; 2003.
35. Office of the Registrar General and Census Commissioner, India. Census of India 2011: primary census abstract. New Delhi: Ministry of Home Affairs, Government of India; 2013.
36. International Institute for Population Sciences, ICF. National Family Health Survey (NFHS-5), 2019-21: India. Mumbai: IIPS; 2021.
37. National Statistical Office. Annual report, Periodic Labour Force Survey (PLFS), July 2017-June 2018. New Delhi: Ministry of Statistics and Programme Implementation, Government of India; 2019.

38. National Statistical Office. Annual report, Periodic Labour Force Survey (PLFS), July 2021-June 2022. New Delhi: Ministry of Statistics and Programme Implementation, Government of India; 2022.
39. National Statistical Office. Time use in India, 2019. New Delhi: Ministry of Statistics and Programme Implementation, Government of India; 2020.
40. National Crime Records Bureau. Crime in India 2021. New Delhi: Ministry of Home Affairs, Government of India; 2022.
41. Election Commission of India. Statistical report on general elections, 2019 to the 17th Lok Sabha. New Delhi: Election Commission of India; 2019.
42. Constitution (Seventy-third Amendment) Act, 1992. New Delhi: Government of India; 1992.
43. Kandiyoti D. Bargaining with patriarchy. Gend Soc. 1988;2(3):274-90.
44. Pre-Conception and Pre-Natal Diagnostic Techniques (Prohibition of Sex Selection) Act, 1994. New Delhi: Government of India; 1994.
45. Prohibition of Child Marriage Act, 2006. New Delhi: Government of India; 2006.
46. Dowry Prohibition Act, 1961. New Delhi: Government of India; 1961.
47. Hindu Succession (Amendment) Act, 2005. New Delhi: Government of India; 2005.
48. Vineeta Sharma v. Rakesh Sharma. Civil Appeal No. 32601 of 2018. New Delhi: Supreme Court of India; 2020.
49. Protection of Women from Domestic Violence Act, 2005. New Delhi: Government of India; 2005.
50. Sexual Harassment of Women at Workplace (Prevention, Prohibition and Redressal) Act, 2013. New Delhi: Government of India; 2013.
51. Maternity Benefit (Amendment) Act, 2017. New Delhi: Government of India; 2017.
52. Jensen R. Do labor market opportunities affect young women's work and family decisions? Experimental evidence from India. Q J Econ. 2012;127(2):753-92.
53. Jensen R, Oster E. The power of TV: cable television and women's status in India. Q J Econ. 2009;124(3):1057-94.
54. Swain RB, Wallentin FY. Does microfinance empower women? Evidence from self-help groups in India. Int Rev Appl Econ. 2009;23(5):541-56.
55. Drèze J, Sen A. An uncertain glory: India and its contradictions. Princeton: Princeton University Press; 2013.
56. Nussbaum MC. Women and human development: the capabilities approach. Cambridge: Cambridge University Press; 2000.



थाती शोध पत्रिका

अंतर्राष्ट्रीय त्रैमासिक सहकर्म-समीक्षित, ओपन एक्सेस शोध पत्रिका

ISSN(O) : 2584-2722

वर्ष 1, अंक 2, जनवरी - मार्च 2024

Online Available : <https://thati.net/>

57. Rege S. Dalit women talk differently: a critique of 'difference' and towards a Dalit feminist standpoint position. Econ Polit Wkly. 1998;33(44):WS39-46.
58. Chakravarti U. Gendering caste: through a feminist lens. Calcutta: Stree; 2003.
59. Crenshaw K. Demarginalizing the intersection of race and sex: a Black feminist critique of antidiscrimination doctrine, feminist theory and antiracist politics. Univ Chic Leg Forum. 1989;1989(1):139-67.
60. Mohanty CT. Under Western eyes: feminist scholarship and colonial discourses. Fem Rev. 1988;30:61-88.
61. Menon N. Seeing like a feminist. New Delhi: Zubaan, Penguin Books India; 2012.
62. Batliwala S. Taking the power out of empowerment: an experiential account. Dev Pract. 2007;17(4-5):557-65.
63. Cornwall A. Women's empowerment: what works? J Int Dev. 2016;28(3):342-59.